संज्ञावाचकाः शब्दाः

१. वृद्धि

महावैयाकरण महर्षि पाणिनि द्वारा रचित 'अष्टाध्यायी' ग्रन्थ में विविध कार्य सम्पादन की दृष्टि से अनेकानेक संज्ञाओं का विधान किया गया है। इन संज्ञाओं को परिभाषित करने के लिये सूत्र लिखे गये हैं। अष्टाध्यायी के प्रथम सूत्र में वृद्धि संज्ञा को परिभाषित करते हुए आचार्य पाणिनि कहते हैं—

वृद्धिरादैच् १।१।१

इस सूत्र वृत्ति में श्रीमद्भट्टोजिदीक्षित लिखते हैं—

आदैच् वृद्धिसंज्ञः स्यात्।

अर्थात् आत् (आ) तथा ऐच् (ऐ और औ) की संज्ञा वृद्धि है। वृद्धिसंज्ञा होने का फल है कि सन्धिप्रकरण में 'वृद्धिरेचि' ६-१-८९ सूत्र से अवर्ण के परे एच् (ए, ओ, ऐ, औ) रहने पर वृद्धि एकादेश हो जाता है। इसके उदाहरण अग्रलिखित हैं—

प्र + एधते = प्रैधते। प्रष्ठ + ओहः = प्रष्ठौहः।

देव + ऐश्वर्यम् = देवैश्वर्यम्। महा + औषध = महौषध।

इसी प्रकार 'अ' तथा 'ऋ' मिलकर 'आ' वद्धि एकादेश हो जाता है इसके लिये पाणिनीय-सूत्र है—उपसर्गादृति धातौ ६-१-९०। अर्थात् अवर्णान्त उपसर्ग और परवर्ती ह्रस्व ऋकारादि धातुओं के अवयव भूत ऋ के स्थान में अर्थात् 'अ' और 'ऋ' मिलकर 'आ' वृद्धि एकादेश हो जाता है। फलतः 'उरण् रपरः' १-१-५१ सूत्र से रपरत्व हो जाता है। यथा—प्र + ऋच्छति = प्रार्च्छति। इसी तरह उप + ऋच्छति = उपार्च्छति।

तिङन्त प्रकरण में धातु के स्वर की वृद्धि होती है। जैसे भिद् धातु से लङ् लकार में धातु के स्वर (इ) की वृद्धि (ऐ) होने पर अभैत्सीत् रूप बनता है।

कृदन्त प्रकरण में धातु से परे ञित् ('ञ्' की जिसमें इत्संज्ञा हो) या णित् ('ण्' की जहाँ इत्संज्ञा हो) प्रत्यय के रहने पर 'अचो ञ्णिति' ७-१-१५५ सूत्र से अजन्त अङ्ग की वृद्धि हो जाती है। जैसे नी + ण्वुल् = नायकः। हृ + ण्वुल् = हारकः। धातु के उपधा में 'अत्' रहने पर 'अत उपधायाः' ७-२-११६ से उसकी वृद्धि हो जाती है। जैसे पठ् + ण्यत् = पाठ्यम्। रम् + घञ् = रामः।

तद्धितप्रकरण में ञित् या णित् प्रत्यय के परे होने पर 'तद्धितेष्वचामादेः' ७-२-१७ से वृद्धि हो जाती है। जैसे—लोके विदितम्—इस विग्रह में लोक शब्द से तद्धित प्रकरण के

'लोकसर्वलोकाट्ठञ्' ५-१-४४ सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय होने पर 'ठ' का इकादेश होने पर ञित् के कारण आदि अच् (ओ) की वृद्धि 'तद्धितेष्वचामादेः' से होने के बाद लौकिक शब्द से प्रातिपदिकादि कार्य होने से लौकिकम् पद सिद्ध होता है।

२. गुण

पाणिनि-व्याकरण में गुणसंज्ञा के विधान के लिये अष्टाध्यायी में सूत्र है—

अदेङ् गुणः १।१।२

अर्थात अत् (ह्रस्व अकार) तथा एङ् (= ए और ओ) की 'गुण' संज्ञा है। यह गुण 'इको गुणवृद्धी' १-१-३ सूत्र से इक् अर्थात् इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ एवं ऌ वर्ण के स्थान में होता है। 'ए' गुण 'ई' तथा 'ई' के स्थान में होता है। जैसे—जि जातु से तृच् प्रत्यय आने पर 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' ७-३-८४ सूत्र से 'इ' का गुण 'ए' होकर जेता एवम् नी धातु से तृच् आने पर 'ई' का गुण 'ए' होकर नेता आदि पद बनते हैं।

'ओ' गुण 'उ' तथा 'ऊ' के स्थान में होता है। जैसे स्तु धातु से तुमुन् प्रत्यय होने पर गुण करके स्तोतुम् तथा भू धातु से तुमुन् प्रत्यय में गुण के बाद अवादेश होकर भवितुम् पद बनता है।

'ऋ' एवम् 'ॠ' के स्थान में गुण 'अ' होता है तथा 'उरण् रपरः' १-१-५१ से रपरत्व हो जाता है जैसे—कृ + तृच् = कर्ता। तॄ + तृच् = तरिता आदि।

सन्धि प्रकरण में आद्गुणः ६-१-८७ सूत्र से अ या आ+इ=ए तथा अ या आ+उ=ओ गुण होते हैं। जैसे—

दिन + इन्द्र = दिनेन्द्र। महा + ईश = महेश।

सूर्य + उदय = सूर्योदय। गङ्गा+उदक=गङ्गोदक।

इसी प्रकार अ + ऋ = अर गुण होता है तथा 'उरण् रपरः से रपरत्व होने पर कृष्ण + ऋद्धिः = कृष्णर्द्धिः प्रयोग होता है। इसी तरह लपरत्व होने पर तव + ऌकार = तवऌकारः सिद्ध होता है।

तिङन्त प्रकरण में सिध् धातु से तिप् प्रत्यय आने पर 'पुगन्तलघूपधस्य च' ७-३-८६ सूत्र से धातु के 'इ' का गुण 'ए' होने पर सेधति प्रयोग होता है। शुच् धातु से तिप् प्रत्यय में इसी सूत्र से गुण होने पर शोचति प्रयोग होता है।

३. संयोग

संयोग संज्ञा के लिये पाणिनि-सूत्र है—

हलोऽनन्तरा संयोगः १।१।७

श्रीमद्भट्टोजिदीक्षित ने इस सूत्र की वृत्ति में लिखा है—

अज्भिरव्यवहिता हलः संयोगसंज्ञाः स्यु।

अर्थात् अच् (=स्वर) के व्यवधान से रहित हल् (=व्यञ्जन) के समूह की 'संयोग' संज्ञा है। अच् के व्यवधान से स्पष्ट है कि व्यवधान सदा विजातीयों का होता है, सजातीयों का नहीं। सूत्रस्थ 'हलः' में जाति बहुवचन होने से दो या दो से अधिक वर्णों का ग्रहण होता है।

इसका उदाहरण है शुक्लः या रम्यः। शुक्ल में 'क्' तथा 'ल' के बीच में किसी स्वर के नहीं रहने के कारण प्रकृत सूत्र से दोनों—'क्' एवं 'ल्' की संयोग संज्ञा होती है। फलतः संयोग के पर रहने से 'शु' के ह्रस्व रहने पर भी 'संयोगे गुरुः' १-४-११ सूत्र से गुरु संज्ञा होती है।

संयोग संज्ञा का दूसरा फल है—'संयोगान्तस्य लोपः' ८-२-२३ सूत्र से उसका लोप हो जाना। जैसे सुधी + उपास्यः में 'इको यणचि' ६-१-७७ सूत्र से यण् होने पर सुध् य् उपास्य की स्थिति में 'संयोगान्तस्य लोपः' सूत्र से संयोगान्त 'य्' का लोप प्राप्त होता है, किन्तु 'यणः प्रतिषेधो वाच्यः' इस वार्तिक से उस लोप का प्रतिषेध हो जाता है।

दूसरा उदासरण है—स्त्यानः।

यहाँ स्त्यै धातु से क्त प्रत्यय होने पर संयोगादि अकारान्त धातु होने के कारण निष्ठा के 'क्त' के स्थान में 'न' हो जाता है जिससे स्त्यानः आदि प्रयोग सिद्ध होते हैं।

४. सवर्ण

सवर्ण संज्ञा विधान के लिये पाणिनि-सूत्र है—

तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् १।१।९

भट्टोजिदीक्षित ने इसकी वृत्ति में लिखा है—

ताल्वादिस्थानमाभ्यन्तरप्रयत्नश्चेत्येतद्द्वयं येन तुल्यं तन्मिथः सवर्णसंज्ञं स्यात्।

अर्थात् तालु आदि उच्चारण स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न—ये दोनों जिन वर्णों के परस्पर एक हों उनकी सवर्ण संज्ञा होती है। जैसे—क, ख, ग, घ आदि।

इन सभी वर्णों का उच्चारण स्थान कण्ठ है तथा प्रयन्न स्पृष्ट है। इस प्रकार समान स्थानी और समान प्रयत्न वाले होने के कारण वे परस्पर सवर्णसंज्ञक हैं।

समानो वर्णः सवर्णः (सवर्ण =समान वर्ण) सवर्णसंज्ञा विधायक दूसरा सूत्र है—

'अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः' १।१।६९

अर्थात् अविधीयमान अण् (अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र, ल) और उदित् (कु, चु, टु, तु, पु) वर्ण सवर्ण संज्ञक होते हैं।

यथा—'इको यणचि' ६-१-७७ सूत्र में इक् और अच् अविधीयमान है क्योंकि विधीयमान तो इक् के स्थान में यण् है। इक् प्रत्याहार और अच् प्रत्याहार दोनों अण् प्रत्याहारान्तर्गत है ही। अतएव दोनों अपने सवर्णों का भी बोध कराते हैं। यही कारण है

कि सुधी + उपास्यः में इकार के सवर्ण ईकार के स्थान में यण् का य् होकर सुध्युपास्यः प्रयोग निष्पन्न होता है।

वार्तिककार के अनुसार ऋ और ऌ वर्ण परस्पर सवर्णसंज्ञक होते हैं। अतः कहा है—

'ऋऌवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम्'।

५. प्रगृह्य

प्रगृह्यसंज्ञा के लिये अष्टाध्यायी में सूत्र है—

ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् १।१।११

इसकी वृत्ति इस प्रकार है—

ईदूदेदन्तं द्विवचनं प्रगृह्यसंज्ञं स्यात्।

अर्थात् ईदन्त, ऊदन्त और एदन्त द्विवचनान्त शब्दों की संज्ञा 'प्रगृह्य है। तात्पर्य है कि जिस द्विवचनान्त पद के अन्त में ई (दीर्घ), ऊ (दीर्घ) तथा ए रहता है उसकी प्रगृह्यसंज्ञा होती है।

प्रगृह्यसंज्ञा का फलहै—'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्' ६-१-१२५ सूत्र से प्रगृह्य संज्ञक पद से परे अच् वर्ण के रहने पर प्रकृतिभाव हो जाता है। इस प्रकार वहाँ दो स्वरों में सन्धि नहीं होती है, बल्कि पहले के समान ही रूप रह जाता है। यथा—

हरी एतौ

यहाँ 'हरी' पद ईदन्त द्विवचनान्त है। अतः 'ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्' सूत्र से 'हरी' की प्रगृह्यसंज्ञा होती है। फलतः 'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्' सूत्र से प्रकतिभाव हो जाने से हरी एतौ—यहप्रकृति के समान ही रूप रह जाता है। यहाँ दो स्वरों (इ और ए) की संहिता रहने से 'इको यणचि' ६-१-७७ सूत्र से यण् प्राप्त था जिसका निषेध प्रगृह्य संज्ञा तथा प्रकृति भाव के कारण हो गया है।

ऊकारान्त का उदाहरण है—विष्णू इमौ।

एकारान्त का उदाहरण है—पचेते इमौ।

प्रगृह्यसंज्ञा करने वाला दूसरा सूत्र है—

अदसो मात् १।१।१२

अर्थात् अदस् शब्द के स्थान में हुए मकार से परवर्ती ईत ऊँत् और एत् की प्रगृह्यसंज्ञा होती है। जैसे—अमी ईशाः। यहाँ ईकार तथा ईकार की संहिता रहने से 'अकः सवर्णे दीर्घः' ६-१-९९ सूत्र से दीर्घ प्राप्त था, किन्तु 'अदसो मात्' सूत्र से प्रगृह्यसंज्ञा तथा 'प्लुतप्रगृत्या अचि नित्यम्' सूत्र से प्रकृति भाव होने के कारण दीर्घ का निषेध होने से 'अमी ईशाः' प्रकृत रूप ही रहता है।

इसी प्रकार 'शे' (१-१-१३) तथा 'ऊङ्' (१-१-१७) एवं 'ऊँ' (१-१-१८) आदि सूत्र प्रगृह्यसंज्ञा करने के लिये हैं।

६. घु

घुसंज्ञा के लिये अधोलिखित सूत्र है—

दाधाघ्वदाप् १।१।२०

इस सूत्र की वृत्ति में भट्टोजिदीक्षित कहते हैं—

दारूपा धारूपाश्च धातवो घुसंज्ञाः स्युः, दाप्दैपौ विना।

अर्थात् दाप् और दैप् धातुओं को छोड़कर 'दा' के रूप में प्रस्तुत होने वाली (डुदाञ्, दाण्, दो और देङ्) धातुओं और 'धा' के रूप में उपस्थित (डुधाञ् एवं धेट्) धातुओं की संज्ञा 'घु' है।

इस घुसंज्ञा के अनेक फल होते हैं। घुसंज्ञक दा धातु से कर्म अर्थ में 'सार्वधातुके यक्' ३-१-६१ सूत्र से यक् प्रत्यय होने पर 'त' प्रत्यय में 'घुमास्थागापाजहातिसां हलि' ६-४-६६ सूत्र से धातु के आकार का ईकार आदेश हो जाने पर दो + यक्+ते=दीयते रूप होता है। इसी तरह धा धातु की घुसंज्ञा होने से आकार का ईत्व होने से धीयते पद बनता है।

इसी प्रकार घुसंज्ञक दा धातु से लोट लकार में सिप् प्रत्यय होने पर 'सेर्ह्यपिच्च' ३-४-८७ सूत्र से 'सि' का हि आदेश होने पर 'ध्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च' ६-४-११९ सूत्र से घुसंज्ञक दा धातु के 'आ' का एत्व होने पर देहि प्रयोग बनता है।

प्र उपसर्ग पूर्वक धा धातु की घु संज्ञा 'दाधाघ्वदाप्' सूत्र से होने पर 'उपसर्गे घोः किः' ३-३-९२ सूत्र से 'कि' प्रत्यय होने पर प्रधिः पद बनता है।

धा धातु की प्रकृत सूत्र से घु संज्ञा होने पर लिङ् लकार में 'एर्लिङि' ६-४-६७ सूत्र से 'आ' का एत्व होने पर धेयात्, धेयास्ताम् तथा धेयासुः आदि प्रयोग बनते हैं।

इनके अतिरिक्त कुछ और फल भी घुसंज्ञा के होते हैं।

७. निष्ठा

निष्ठा संज्ञा के लिये सूत्र है—

क्तक्तवतू निष्ठा १।१।२६

अर्थात् क्त और क्तवतु प्रत्ययों की 'निष्ठा' संज्ञा है। 'क्त' के 'क्' एवं 'क्तवतु' के 'क्' तथा 'उ' की इत्संज्ञा एवं लोप हो जाता है।

ये दोनों प्रत्यय धातु से भूतकाल के अर्थ में लगते हैं। 'क्त' प्रत्यय 'तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः' ३-४-७० सूत्र से भाव तथा कर्म अर्थ में धातु से होता है। एवम् 'क्तवतु' प्रत्यय 'कर्तरि कृत्' ३-४-६७ सूत्र से कर्ता में होता है। इसलिये क्तप्रत्ययान्त के कर्ता से तृतीया तथा क्तवतु प्रत्ययान्त के कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है। क्तप्रत्ययान्त के कर्म में प्रथमा तथा क्तवतु प्रत्ययान्त के कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है।

जैसे—तेन ग्रन्थः लिखितः। इस वाक्य में लिख् धातु में क्त प्रत्यय होने से इसके कर्ता में तृतीया तथा कर्म कारक में प्रथमा विभक्ति हुई है। इस वाक्य का अर्थ है उसके द्वारा ग्रन्थ लिखा गया।

इसी प्रकार—सः ग्रन्थं लिखितवान् इस वाक्य में लिख् धातु से क्तवतु प्रत्यय होने पर लिखितवत् शब्द से लिखितवान् पद बना है। इसके कर्ता में प्रथमा तथा कर्म में द्वितीया विभक्ति हुई है।

अकर्मक धातु से कर्ता अर्थ में भी 'क्त' प्रत्यय भूतकाल में होता है। ऐसा कर्तृवाच्य में देखा जाता है। जैसे—मोहनः हसितः। यहाँ हस् धातु से क्त प्रत्यय कर्ता अर्थ में हुआ है। अतः हस् + क्त = हसित शब्द से प्रातिपदिकादि कार्य होने पर सु विभक्ति में हसितः पद बना है। कर्तृवाच्य होने से इसके कर्ता में प्रथमा विभक्ति हुई है।

भाव वाच्य में क्त प्रत्यय का उदाहरण है—तेन धावितम्।

८. सम्प्रसारण

सम्प्रसारण संज्ञा के लिये महर्षि पाणिनि का सूत्र है—

इग्यणः सम्प्रसारणम् १।१।४५

भट्टोजिदीक्षित इस सूत्र की वृत्ति में लिखते हैं।

यणः स्थाने प्रयुज्यमानः इक् सम्प्रसारणसंज्ञः स्यात्।

इसका अर्थ है—यण् (य्, व् र् ल्) के स्थान में आने वाले इक् (इ, उ, ऋ, ऌ) की संज्ञा 'सम्प्रसारण' है।

'इको यणचि' ६-१-७७ सूत्र से इक् (इ, उ, ऋ, ऌ) के स्थान में यण् (य्, व्, र् ल्) होता है जबकि 'इग्यणः सम्प्रसारणम्' सूत्र से यण् के स्थान में इक् सम्प्रसारण होता है। इस प्रकार यह 'इको यणचि' का विपरीत है।

सम्प्रसारण का उदाहरण है—यूनः। यहाँ युवन् शब्द से शस् विभक्ति में 'लशक्वतद्धिते' १-३-८ सूत्र से 'श्' की इत्संज्ञा होने पर लोप के बाद युवन् अस् की स्थिति में 'ध्वयुवमघोनामतद्धिते' ६-४-१३३ सूत्र से 'व्' (यण्) के स्थान में 'उ' (इक्) सम्प्रसारण होने पर 'यु उ न् अस्' की स्थिति में दीर्घ के बाद सु का रुत्व एवं विसर्ग होने पर यूनः पद सिद्ध होता है।

इसी प्रकार विश्वं वहति इस विग्रह में विश्ववाह् शब्द से शस् विभक्ति में 'श्' की इत्संज्ञा एवं लोप के बाद 'वाह ऊठ्' ६-४-१३२ सूत्र से 'व्' के स्थान में ऊठ् सम्प्रसारण होने पर 'एत्येधत्यूठसु' ६-१-८९ सूत्र से वृद्धि होने पर रुत्व एवं विसर्ग के बाद विश्वौहः पद सिद्ध होता है।

९. लोप

लोपसंज्ञा के लिये अष्टाध्यायी में सूत्र है—

अदर्शनं लोपः १।१।६०

इस सू की वृत्ति में भट्टोजिदीक्षित ने कहा है—

प्रसक्तस्यादर्शनं लोपसंज्ञं स्यात् ।

अर्थ है—प्रसक्त या विद्यमान के अदर्शन (नहीं दिखायी पड़ना) की संज्ञा लोप है।

प्रत्ययों, विभक्तियों या आदेश के लोप के लिये अनेक सूत्र अष्टाध्यायी में पढे गये हैं। उनमें एक है—'लोपः शाकल्यस्य' ८-३-१९

हरे+इह इस विच्छेद में 'एचोऽयवायावः' सूत्र से अयादेश होने पर हर् अय् इह की स्थिति में 'लोपः शाकल्यस्य' से 'य्' का लोप विकल्प से होने पर हर इह प्रयोग होता है'। चूंकि यह लोप विकल्प से होता है। अतः पक्ष में लोप नहीं होने पर हरयिह प्रयोग भी होता है।

लोप करने के लिये दूसरा सूत्र है—

हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्य पृक्तं हल् ६।१।६७

अर्थात् हलन्त, दीर्घीभूत ङी एवम् आप् से परवर्ती अपृक्तसंज्ञक सु (स्), ति (=त्) और सि (स्) का लोप हो जाता है। जैसे—नदी शब्द से सु विभक्ति के आने पर अपृक्त हल् 'स्' का 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्' सूत्र से लोप हो जाने पर नदी पद बनता है।

लोप के लिये अन्य सूत्र है—

न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य ८।२।७

अर्थात् प्रातिपदिकसंज्ञक पद के अन्त्य नकार का लोप हो जाता है। इसका उदाहरण है— राजा। यहां राजन् शब्द से सु विभक्ति के आने पर 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' सूत्र से 'न्' का लोप होने पर दीर्घ होता है तथा 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्—' सूत्र से सु का लोप होने पर राजा पद सिद्ध होता है।

१०. टि

लघुसंज्ञाओ में टिसंज्ञा महत्त्वपूर्ण है। इस संज्ञा के लिये अष्टाध्यायी में अग्रलिखित सूत्र है—

अचोऽन्त्यादि टि १।१।६४

इस सूत्र की वृत्ति में वृत्तिकार कहते हैं—

अचां मध्ये योऽन्त्यः स आदिर्यस्य तट्टिसंज्ञं स्यात् ।

अर्थात् किसी शब्द के अङ्ग भूत स्वरों में अन्तिम स्वर से लेकर अवशिष्ट अंश की 'टि' संज्ञा होती है। तात्पर्य है कि किसी शब्द में रहने वाले अचों में जो अन्तिम अच्

(अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ, ऐ औ) होता है वह (अन्तिम अच्) जिसके आदि में हो उस समुदाय की टि संज्ञा होती है। इसका उदाहरण है—

मनस् + ईषा = मनीषा

यहाँ मनस् में दो अच् (अ) हैं जिनमें अन्तिम अच् है—'न' का 'अ'। यह 'अ' यहाँ 'अस्' के आदि में है। अतः 'अस्' की टि संज्ञा होती है। फलतः 'शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्' इस वार्तिक से टि (अस्) का पररूप हो जाता है। इस प्रकार 'अस्' परवती 'ई' में मिल जाता है। अतः मनीषा पद सिद्ध होता है।

इसी प्रकार आत्मनेपदी एध धातु से लट् लकार के स्थान में 'त' प्रत्यय आने पर 'त' के 'अ' की टिसंज्ञा 'अचोऽन्त्यादि टि' सूत्र से होती है। इसलिये 'टित आत्मनेपदानां टेरे' सूत्र से टिसंज्ञक 'अ' का 'ए' आदेश होने पर एधते रूप बनता है।

यहाँ 'त' प्रत्यय में अन्तिम अच् (अ) के बाद कोई अन्य वर्ण नहीं है। अतः व्यपदेशिवद् न्याय से अन्तिम अच् (अ) की टिसंज्ञा प्रकृत सूत्र से हुई है।

'नस्तद्धिते' ६-४-१४४ सूत्र से तद्धित प्रत्यय के परे नकारान्त 'भ' संज्ञक शब्द के 'टि' का लोप हो जाता है जैसे राज्ञः समीपम्—इस विग्रह में टच् प्रत्यय होने पर उपराजन् के टि (अन्) का लोप होने पर उपराजम् पद बनता है।

११. उपधा

उपधासंज्ञा के लिये अष्टाध्यायी में सूत्र है—

अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा १।१।६५

इस सूत्र की वृत्ति इस प्रकार है—

अन्त्यादलः पूर्वो वर्ण उपधासंज्ञः स्यात्।

अर्थात् शब्द या धातु के अन्तिम अल् (वर्ण) से पूर्व में रहने वाले वर्ण की उपधासंज्ञा होती है। उपधासंज्ञा करने के अनेक प्रयोजन हैं। इसका उदाहरण है—राजानौ।

राजन् शब्द से औ विभक्ति में राजन् शब्द के अन्तिम वर्ण 'न्' से पूर्व में 'अ' की उपधासंज्ञा 'अलोऽन्त्यात्पूर्वं उपधा' सूत्र से होती है। फलतः 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' ६-४-८ सूत्र से उपधासंज्ञक 'अ' का दीर्घ होकर राजानौ पद निष्पन्न होता है।

कृदन्त के कृत्य प्रकरण में शप्यम्, लभ्यम् आदि इसके उदाहरण हैं। यहाँ शप् एवं लभ् धातु की उपधा में 'अ' रहने के कारण 'पोरदुपधात्' ३-१-९८ सूत्र से यत् प्रत्यय होने पर शप्यम् एवं लभ्यम् आदि प्रयोग बनते हैं।

पूर्व कृदन्त प्रकरण में पठ् धातु से कर्ता अर्थ में ण्वुल् प्रत्यय आने पर 'अत उपधायाः' ७-२-११६ सूत्र से धातु की उपधा (अ) की वृद्धि (आ) होने से पाठकः पद बनता है।